'ब्रह्म सत्यं जगत् स्फूर्तिः, जीवनं सत्यशोधनम्'

विनोबा-प्रवचन

(सप्ताह में तीन बार—मंगल, गुरु और शनि को प्रकाशित)

वर्ष ३, अंक ६८ | वाराणसी, मंगलवार ९ जून, १९५९ | पच्चीस रुपया वार्षिक

विद्यार्थियों के बीच

पठानकोट (पंजाब) २१-५-'५९

विद्यार्थी आत्मज्ञान और विज्ञान के आधार पर जागतिक समस्याओं का चिन्तन करें

[श्री जस्टिस शंकरशरणजी के प्रयत्नों के फलस्वरूप भारत-सेवक-समाज की ओर से हिंदुस्तान भर के कुछ प्रमुख विद्यार्थी विनोबाजी के निकट पठानकोट पहुँचे। आज देश में विद्यार्थी-समाज की उद्दंडता के लिए तरह-तरह की बातें चलती हैं और यह कहा जाता है कि विद्यार्थी सही ढंग से अपने जीवन का निर्माण नहीं करते हैं। ऐसी स्थिति में विनोबाजी के पास देशभर के प्रमुख विद्यार्थी आयें और विचार-विनिमय करें, यह बहुत आवश्यक है। विनोबाजी ने विद्यार्थियों के साथ चर्चा और विचार-विनिमय के रूप में अपना समय बिताया। प्रश्नोत्तरों के माध्यम से किसी भी विषय पर आसानी से और गहराई से विचार-विनिमय हो सकता है। उन प्रश्नोत्तरों को समग्र रूप में यहाँ दिया जा रहा है।—सं०]

मेरे लिए यह आनंद का अवसर है कि हिन्दुस्तान भर के कुछ चुने हुए विद्यार्थियों के सामने तालीम के विषय पर अपने विचार पेश करने का मौका मुझे मिल रहा है। शंकरशरणजी दो-तीन साल से इस प्रयत्न में लगे थे कि विद्यार्थियों में सर्वोदय-विचार का प्रचार करने के लिए हम कुछ करें। मैंने उन्हें ज्यादा उत्तेजन नहीं दिया और न रोका ही। मैंने केवल इतना ही कहा कि आप प्रयत्न करें तो मैं समय दे सकता हूँ। मैं अपनी ओर से इस प्रकार का कोई आंदोलन करना पसंद नहीं करूँगा, क्योंकि मेरा यह विचार है कि मैं आक्रामक न बनूँ। आठ साल से मेरी सभाओं में विद्यार्थी आते हैं और विचार सुनते हैं। इस तरह के स्वाभाविक आन्दोलन पर या विचार-प्रचार पर मेरा विश्वास है। मैंने अपने अनुभव से यह सीखा है कि यदि गहराई में जाकर काम करना हो तो ऐसे स्वाभाविक तरीके से ही प्रचार करना अधिक बेहतर होगा।

वैज्ञानिक भौतिकवाद और धार्मिक श्रद्धा

प्रश्नः—वैज्ञानिक भौतिकवाद के कारण तथा यन्त्रवाद के अन्धाधुन्ध प्रचार के कारण मानव की धार्मिक श्रद्धा मिटती जा रही है। जीवन की मान्यताएँ अस्थिर हो रही हैं। उन्हें पुनः स्थापित करने का क्या उपाय है?

विनोबाः—प्रस्तुत सवाल में वैज्ञानिक भौतिकवाद के बारे में जो अभिप्राय प्रगट किया गया है, वह पूरी तरह से सही नहीं है। वैज्ञानिक भौतिकवाद धर्म के प्रति श्रद्धालु नहीं है, इस प्रकार का फैसला देना ठीक नहीं होगा। इस फैसले से यह निष्कर्ष निकलता है कि हमने वैज्ञानिक भौतिकवाद का अर्थ ठीक तरह से नहीं समझा। हमें समझना चाहिए कि भौतिकवाद एक ज्ञान है और वैज्ञानिक भौतिकवाद उससे कुछ अलग चीज है। भौतिक जीवन का स्वरूप यह है कि मनुष्य खाना, पीना, भौतिक उन्नति करना आदि के बारे में ही सोचता रहे, केवल अपनी ही चिन्ता करता रहे। समाज को खाना-पीना मिले, समाज की भौतिक समृद्धि हो, यह नहीं सोचता। लेकिन वैज्ञानिक भौतिकवाद कहता है कि हमारा मन और दुनिया, ये जो दो अंग एक-दूसरे से सम्बन्ध रखनेवाले हैं, उनमें से कौनसा प्रधान और कौनसा गौण है, यह समझ लिया जाय।

सृष्टि और मन का आधार

विज्ञान कहेगा कि मन गौण है और विश्व प्रधान है। मन दुनिया का प्रतिबिंब है। उस पर दुनिया का असर होता है। मन से दुनिया नहीं बनी है, बल्कि दुनिया से मन बना है। मन मूलतः भौतिक है। याने सामने जो भूत-सृष्टिपड़ी है, उसका परिणाम है।

एक विचार यह भी कहता है कि सारी सृष्टि मेरे मन की कल्पना है। मैं मरता हूँ तो सृष्टि समाप्त हो जाती है। मैं आँख बन्द कर के अन्धा हो जाता हूँ तो यह विविध रूपोंवाली सृष्टि भी समाप्त हो जाती है। मैं बहरा हो जाऊँ तो मेरे लिए यह सारी नाद-सृष्टि खत्म हो जायगी। इसलिए दुनिया मेरी मानसिक सृष्टि की प्रतिमा है, यह माननेवाला एक पक्ष है। दूसरा पक्ष कहता है कि हमारा मन सृष्टि का बना हुआ है। हम सृष्टि में परिवर्तन ला सकते हैं तो मन में भी परिवर्तन ला सकते हैं। मानसिक परिवर्तन स्वयं स्वतन्त्र वस्तु नहीं है। उस पर दुनिया का असर होता है।

दुनिया का स्वरूप क्या है, इसका निर्णय अभी तक नहीं हुआ है। यह जो माना गया है कि वैज्ञानिक भौतिकवाद जड़वाद है, यह सही नहीं है। विज्ञान का अभी तक निर्णय नहीं हुआ है कि सारी सृष्टि जड़मय है या चेतनमय। लेनिन ने कहा था कि जड़वाद और ब्रह्मवाद में से कौन-सा सही है, इसका फैसला हम

विज्ञान पर छोड़ना चाहते हैं, लेकिन विज्ञान अभी तक उसका फैसला नहीं कर पाया है। इसलिए अभी तक यह एक खुला सवाल है। अगर सृष्टि जड़मय है, यह साबित हो या चेतनमय है, यह साबित हो, तब भी उसके असर में हमारा मन है, यह वैज्ञानिकवाद का कहना है। जब लेनिन लिख रहा था, तब विज्ञान जड़वाद की ओर झुका हुआ था। पर अभी वह ब्रह्मवाद की ओर अधिक झुका हुआ है। जैसे बच्चे या जवानों के पास थोड़ा-सा ज्ञान होता है तो उससे वे पक्कापन मान लेते हैं, अपनी धारणाएँ बना लेते हैं और कहने लगते हैं कि आपके साथ हमारा मौलिक और प्रामाणिक मतभेद है। ऐसी ही हालत सौ साल पहले विज्ञान की भी थी।

विज्ञान अनादि काल से चला आ रहा है, लेकिन सौ साल पहले जब उसकी प्रगति होने लगी, तब थोड़े ज्ञान से सृष्टि जड़ है, ऐसा मानने की तरफ विज्ञान का पक्का झुकाव था। लेकिन जब ज्ञान का विस्तार होने लगा तो शंका आने लगी कि शायद सृष्टि जड़ भी हो। इस तरह शायदवाली बात आ गयी। धीरे-धीरे वैज्ञानिक कहने लगे कि शायद यह जड़वाद ही ब्रह्मवाद निकले। अभी भी शायदवाली बात है ही। पक्का निर्णय नहीं हुआ है। पहले तो पक्का जड़वाद था, किन्तु बाद में कुछ संशयवाद आया। आज भी संशयवाद ही है, लेकिन उसका झुकाव ब्रह्मवाद की तरफ है। विज्ञान की यह खूबी है कि वह नम्र होता है। जहाँ नम्रता न हो, वहाँ मनुष्य का मन खुला नहीं हो सकता और जहाँ मनुष्य का मन खुला न हो, वहाँ अवैज्ञानिक दृष्टिकोण आ जाता है, यह बात हमें ठीक तरह से समझ लेनी चाहिए।

सृष्टि का स्वरूप और विज्ञान

सृष्टि का स्वरूप क्या है, यह सवाल विज्ञान पर छोड़ा गया है। लेकिन अगर सृष्टि का स्वरूप ब्रह्ममय निकले तो एक क्षण में वैज्ञानिक भौतिकवाद का शांकर अद्वैत के रूप में परिवर्तन हो जायेगा। अद्वैत मानता है कि मन सृष्टि का प्रतिबिंब है। हमारे यहाँ द्वैतवादी या अद्वैतवादी किसी ने भी यह नहीं माना कि मन ने दुनिया बनायी है। दुनिया तो पहले से ही थी, मन बाद में आया। इसलिए मन ने दुनिया बनायी, ऐसा अगर हम आस्तिक लोग मानते तो ईश्वर को सृष्टि बनाने की तकलीफ क्यों देते? है ही हमारा मन, जो सृष्टि बनायेगा! लेकिन हम मानते हैं कि ईश्वर सृष्टि को बनाता है। फिर एक यही सवाल रहता है कि ईश्वर को मानें या न मानें।

इस बात से यह साबित हो जाता है कि अगर सृष्टि में ब्रह्मतत्त्व भरा है तो वह ब्रह्मतत्त्व मेरे मन में भी भरा हुआ है। यह साबित होने से परिणाम के रूप में जो सिद्धान्त सामने आयेगा, वह अद्वैतवाद ही बनेगा। मैं कहना चाहता हूँ कि वैज्ञानिक भौतिकवाद अद्वैतवाद के बहुत ही नजदीक आ पहुँचा है। केरल के एक कम्युनिस्ट मंत्री ने अपने भाषण में कहा था कि "मैं यद्यपि ईश्वर को नहीं मानता, लेकिन जिस प्रकार का ईश्वर शंकराचार्य मानते थे, वैसा ईश्वर मानने में मुझे कोई आपत्ति नहीं होगी।"

शंकराचार्य ने जो अद्वैत का विचार हमारे सामने पेश किया है, वह एक वैज्ञानिक विचार है। सृष्टि और मन किसी का किसी पर भी असर हो, लेकिन जैसे सृष्टि है, वैसे ही मन है। दोनों का रूप समान है, यह बात मानी हुई है। उसको पहचानने की दो प्रक्रियाएँ हैं। पिंड का परीक्षण करना और सृष्टि का परीक्षण करना। वैज्ञानिक लोग सृष्टि का परीक्षण करते हैं। अब वे सृष्टि का ब्रह्मरूप तय करेंगे तो उन्हें मन को भी ब्रह्मरूप समझना ही पड़ेगा। दूसरी प्रक्रिया यह है कि मन सृष्टि का प्रतिबिंब है। इसलिए पहले प्रतिबिंब देखा जाय और उसका विश्लेषण कर सृष्टि का परीक्षण किया जाय। अन्तर्मन में अनुभव करने के बाद शंकराचार्य जैसे अद्वैतवादियों ने यह निर्णय दिया कि सृष्टि ब्रह्मरूप है। विज्ञान की प्रक्रिया इसके विपरीत है। विज्ञान अणु से ब्रह्मांड की तरफ जाने के बजाय ब्रह्मांड से अणु की तरफ आता है। इसीलिए ब्रह्मवाद की तरफ जाने में विज्ञान को देर हो रही है।

आज वैज्ञानिक भौतिकवाद अद्वैतवाद और अध्यात्मवाद के बहुत ही निकट आ पहुँचा है। एक बाजू से देखें तो वर्तुल के दो सिरों के बीच का फासला ज्यादा से ज्यादा है और दूसरी तरफ से देखें तो कम से कम है। उसी तरह वैज्ञानिक भौतिकवाद का जिस प्रकार विकास हो रहा है, इससे पता चलता है कि वह ब्रह्मवाद के बहुत ही निकट आ रहा है। मैं उन दोनों को इतना नजदीक पाता हूँ, जैसा कि चतुर्दशी का चंद्रमा और पूर्णिमा का चन्द्रमा। कभी-कभी निर्णय करना मुश्किल हो जाता है कि आज चतुर्दशी है या पूर्णिमा।

वैज्ञानिक भौतिकवाद और श्रद्धा

अब सवाल यह है कि श्रद्धा का मतलब क्या है? वैज्ञानिक भौतिकवाद धर्म की श्रद्धा को तोड़ता है या जोड़ता है? कुछ लोग कहते हैं कि फलाना आदमी श्रद्धाशील है और फलाना आदमी बुद्धिशील है। याने एक श्रद्धावादी हुआ और दूसरा बुद्धिवादी। पर इस तरह की भेद-रेखा खींचना बहुत ही गलत है। वास्तव में श्रद्धा और बुद्धि परिपूर्णतः एक जगह हो सकते हैं। बुद्धि और श्रद्धा में कोई विरोध नहीं है। एक बुद्धिहीन मनुष्य भी श्रद्धावान हो सकता है और अत्यन्त बुद्धिमान व्यक्ति भी श्रद्धाहीन हो सकता है। बुद्धि और श्रद्धा दोनों के विरोध की कल्पना बिलकुल गलत है। क्योंकि दोनों के विषय बिलकुल अलग-अलग हैं, जैसे कान और आँख के विषय अलग-अलग हैं। सुंदर संगीत सुनाई दे रहा हो तो कान उसके बारे में अपना निर्णय तुरन्त दे देगा, लेकिन आँख चुप रहेगी। क्योंकि संगीत के बारे में अनुकूल या प्रतिकूल राय प्रगट करना आँख का विषय नहीं है। लेकिन कान और आँख में कोई विरोध है, ऐसा नहीं माना जायगा। उसी तरह श्रद्धा और बुद्धि के क्षेत्र भी अलग-अलग हैं।

बुद्धि और श्रद्धा

श्रद्धा से कर्मशक्ति पैदा होती है और बुद्धि से ज्ञानशक्ति। जैसे मोटर में दो यन्त्र होते हैं; एक दिशा-सूचक और एक गतिवर्धक। उन दोनों में कोई विरोध नहीं है। बल्कि दोनों मिलकर ही मोटर को चलाते हैं। दिशासूचक यन्त्र के अभाव में मोटर कहीं भी टकरा सकती है और गतिवर्धक यन्त्र के अभाव में मोटर चलेगी ही नहीं। उसी तरह श्रद्धा के बिना कर्मशक्ति नहीं आ सकती है, पर बुद्धि के बिना यह मालूम ही नहीं होता कि किस चीज पर अमल करना है। बुद्धि दिशा बताती है और श्रद्धा से उस पर अमल होता है। अमल करने की अधिकारिणी है श्रद्धा और जहाँ विचार बनते हैं, उसकी प्रमुख है बुद्धि। दोनों की मदद से जीवन की पूर्ति हो जाती है।

जिस बात में बुद्धि चलती हो, वहाँ बुद्धि न चलाना, इसका नाम श्रद्धा है, इस प्रकार का बिलकुल गलत खयाल कइयों के मन में पैठा है। जहाँ सामने धुआँ दीखता हो, वहाँ श्रद्धा क्या कहेगी? वह तो बुद्धि की बात है। बिना अग्नि के धुआँ नहीं हो सकता है, इसलिए वहाँ अग्नि जरूर है, यह फैसला बुद्धि देती है! वहाँ श्रद्धा का क्या सवाल है? बुद्धि इतनी स्वाभाविक

बात है कि रास्ते पर मोटर आयी तो जिसे मोटर देखने की आदत है, जिसमें गधापन कम है, ऐसा गधा भी रास्ता छोड़कर पाँच कदम दूर खड़ा होता है और जिन गधों ने कभी मोटर नहीं देखी है, ऐसे गधे मोटर देखकर भाग जाते हैं। लेकिन जिस गधे को मोटर का पूर्वदर्शन है, वह जानता है कि मोटर बने-बनाये रास्ते पर ही चलती है। उसने यह फैसला श्रद्धा से नहीं, बुद्धि से किया। हमने हाथ ऊँचा किया तो कुत्ते भी जानते हैं कि इसका हाथ हम तक नहीं पहुँच सकता है, इसलिए वे भागते नहीं, लेकिन हमने पत्थर उठाया तो वे भाग जाते हैं, क्योंकि वे जानते हैं कि पत्थर हाथ से छूट सकता है और हमारे पास पहुँच सकता है। यह सारी बौद्धिक प्रक्रिया कुत्ते को भी मालूम है। भगवान ने सबको थोड़ी-थोड़ी बुद्धि तकसीम कर दी है। सारी बुद्धि को अपने पास केन्द्रित नहीं कर रखा। इसलिए हरएक के पास बुद्धि है। उसी तरह हरएक को श्रद्धा भी उपलब्ध हुई। बच्चा पैदा होता है और उसके बाद उसका माता के स्तन के साथ संपर्क होता है। उस समय वह यह विचार नहीं करता कि यह खाने की चीज है या नहीं, मेरे लिए मुफीद है या नहीं! वह तत्काल दूध पीना आरम्भ कर देता है। यह काम श्रद्धा के बिना नहीं हो सकता है। बच्चे के पास अल्प ही सही, लेकिन बुद्धि होती है। बाद में वही बुद्धि विकसित होती है। आरम्भ में बच्चा माता पर भरोसा नहीं रखता या श्रद्धा नहीं करता तो वह कैसे जी सकता है? माता पर उसका पूरा भरोसा होता है, इसलिए जब माँ आस्मान की ओर ताककर कहती है कि देखो, सामने आस्मान में चाँद है तो वह तत्काल मान लेता है कि वह चाँद है। तात्पर्य यह कि क्रियारंभ के लिए श्रद्धा जरूरी है। कर्म को गति देने के लिए भी श्रद्धा जरूरी है और उसे दिशा देने के लिए बुद्धि की आवश्यकता है।

धर्म में बुद्धि का प्रयोग

बुद्धि का प्रयोग करने से यदि कोई धर्म टूटता है तो उसे टूटने देना चाहिए। बुद्धि की कैंची से जो धर्म टूटता है, वह नालायक है। जो बुद्धि की कसौटी सहन करता है, वही असली धर्म है। बुद्धि और धर्म का क्षेत्र अलग है। बुद्धि खुद समझती है कि मेरी हद कहाँ तक है। लेकिन जो सोचने का अंग है, उसमें धर्मवाले यह कहें कि बुद्धि चलाने से धर्म टूटता है तो समझना चाहिए कि वह धर्म टूटने ही लायक था। बचपन में हमसे कहा गया कि चोटी खुली रखने से ब्रह्महत्या का पाप लगता है। पहले हमने इस बात को सुन लिया, क्योंकि उस वक्त हम नहीं जानते थे कि ब्रह्महत्या क्या है? फिर एक दिन हमने उसकी गम्भीरता को समझा और पूछा कि चोटी को गाँठ न देने से ब्रह्महत्या का पाप लगता है तो साक्षात् ब्रह्महत्या करने से किसका पाप लगेगा? बस, इसका कोई जवाब नहीं था। टूट गयी श्रद्धा! इस प्रकार की अमंगल बातों से बुद्धि का कोई संबंध नहीं है।

श्रद्धा अंधी न हो

दीपक बुझता है तो कोई न कोई रिश्तेदार मर जाता है, ऐसे गलत संस्कार डालने का रिवाज रहा है। बचपन में यह बात मेरी समझ में नहीं आती थी, इसलिए एक दिन मैंने एक दीपक को नीचे फेंककर तोड़ डाला। फिर माँ से कहा कि अब दस-पंद्रह दिन में कोई न कोई रिश्तेदार मरा, ऐसी खबर आनेवाली है। मेरी माँ चतुर थी, उसने कहा, इस तरह गिराने से कोई नहीं मरता। दीपक अपने आप गिरता है, तभी कोई मरेगा। इस तरह चातुर्य से वह बची, लेकिन श्रद्धा से नहीं बची। मेरे सिख भाई नाराज न हों तो मैं एक बात कह दूँ। अभी मेरे पास गुरु ग्रन्थसाहब का नया संस्करण आया है। वह दो भागों में बँटा हुआ है। दो भाग करने के कारणों का उल्लेख करते हुए यह बताया गया है कि गुरु ग्रन्थसाहब का पाठ आदि करने के लिए स्नान करके आदरपूर्वक बैठना चाहिए, लेकिन यह किताब छप रही है, इससे आदर की संभावना कम हो जाती है। दूसरों के हाथों में जाने से इसकी एक मामूली किताब की हैसियत हो जाती है। इस स्थिति से बचाव करने के लिए तथा गुरु ग्रन्थ-साहब के प्रति अपने आदर-भावों को सुदृढ़ रखने के लिए उसे दो भागों में विभक्त कर दिया गया है। अब लोग जैसा चाहें, वैसे इसका उपयोग कर सकते हैं।

मैं कहना चाहता हूँ कि इसी प्रकार गुरु ग्रन्थसाहब के प्रति एक प्रकार की भावना अभिव्यक्त होती है। लेकिन ऐसा क्यों होना चाहिए? इस प्रकार की श्रद्धा बुद्धि के सामने नहीं टिक सकती। अगर आपको गुरु ग्रन्थसाहब के प्रति आदर रखना है तो फिर दोनों विभागों को एक जैसा मानना चाहिए और अगर उसका आदर नहीं करना है तथा उसे ज्ञान की किताब मात्र समझकर पढ़ना है तो उसे आप एक खंड में भी छाप सकते हैं। इस प्रकार दो खंड करने से क्या लाभ है? केवल श्रद्धा को बनाये रखने के लिए हम इस प्रकार रास्ते निकालें, यह उचित नहीं है।

एक बार न्यायमूर्ति रानडे के पास एक मिशनरी पहुँचे। उन्होंने देखा कि उनके पास जितनी पुस्तकें रखी हुई हैं, उनमें सबसे ऊपर बाइबल है। उससे वे बड़े प्रसन्न हुए और रानडे से कहने लगे, बड़ी खुशी की बात है कि आपने सबसे ऊपर बाइबल रखी। रानडे उनके आशय को समझ गये और जवाब देते हुए बोले कि हाँ, ऊपर तो बाइबल है, उसके नीचे दूसरे ग्रन्थ हैं, लेकिन उन सभी का अधिष्ठान गीता है।

खंडित होनेवाला धर्म धर्म नहीं

सभी धर्मों में धर्म के नाम पर अनेक प्रकार की अन्ध श्रद्धा आ गयी है। इसलिए अगर वह बुद्धि-प्रयोग करने से खंडित होती है तो उसे खंडित होने देना चाहिए। उसमें धर्म का खंडन समझने की बात नहीं है। मान लो, कोई उसे धर्म का खंडन समझता है तो हमें यह भी समझ लेना चाहिए कि असल में धर्म कभी खंडित होनेवाला नहीं है। जो खंडित होनेवाला है, वह धर्म ही नहीं है। इसलिए उसके विषय में दुःख करने का कोई कारण नहीं है।

वैज्ञानिक भौतिकवाद ब्रह्म की तरफ बढ़ेगा तो धर्म के बारे में श्रद्धा कम हो जायगी, यह सवाल बहुत बार पेश किया गया है। क्योंकि जो वेदान्ती ब्रह्मवादी थे, वे किसी भी प्रकार के भ्रम को नहीं मानते थे। इसलिए उन पर ऐसे आक्षेप लगाये जाते थे। श्री शंकराचार्य पर भी दो आक्षेप लगाये गये। १. 'शंकरो वर्णसंकरः'—शंकर वर्णसंकर है। २. 'प्रच्छन्न बौद्धः'—जो बात बुद्ध ने खुल्लमखुल्ला कही, वही बात शंकर ने आवरण डालकर कही है, इसलिए यह प्रच्छन्न बुद्ध है।

अभी जो धर्म चलते हैं, उनमें असलियत क्या है, यही देखना ब्रह्मवाद है। जो तान्त्रिक धर्म होते हैं, वे ब्रह्मवाद में नहीं टिक सकते। तान्त्रिक धर्म मानसिक अवस्थाओं के लिए आवश्यक हो सकते हैं, लेकिन ब्रह्मवाद के लिए बिलकुल अना-वश्यक हैं। निर्गुणवाद में सगुणवाद नहीं टिकता। ऊँचे ज्ञान का नीचे के ज्ञान पर प्रहार होता है।

ज्ञान देने का सही रास्ता

ब्रह्मविद्या के लिए अधिकार चाहिए, ज्ञानप्राप्ति में भी अधिकार-वाद की बात आती है। फिर उसमें क्रम की जरूरत होती है। कौन-सा ज्ञान कब प्राप्त हो, इसका एक क्रम होता है। कोई बच्चा मेरे पास आये और मैं आरंभ में ही उसे सिखाऊँ कि तुम शरीर की परवाह मत करो, हम शरीर नहीं हैं, शरीर से भिन्न हैं तो मैं गलती करूँगा। उस बच्चे को तो मुझे इस प्रकार समझाना चाहिए कि तुम्हें शरीर मजबूत बनाना चाहिए। जब वह यह बात समझ जाय, तब फिर मुझे उसे यह बता देना चाहिए कि यह शरीर ही सब कुछ नहीं है। मौके पर इसे भी फेंक देना पड़ता है। इसी तरह वैज्ञानिक भौतिकवाद या ब्रह्मवाद का किसी जरूरी चीज पर हमला होता है तो फिर कुछ देर तक उस ज्ञान को दूर रखना होगा। ज्ञानप्राप्ति में जल्दी करने की हवस नहीं होनी चाहिए। वह क्रमिक विकास का कार्यक्रम है। जैसे स्कूल का ज्ञान प्राप्त करने पर कालेज में दाखिल हो सकते हैं, वैसे ही आत्मज्ञान के विषय में भी समझना चाहिए। सृष्टि के मूल में जो तर्कशास्त्र है, उससे आरम्भ नहीं करना चाहिए। वह तो आखिर में आयेगा। समाज में पहले आचार-धर्म स्थिर हो जाय, फिर वेदान्त या वैज्ञानिक भौतिकवाद आये तो ठीक है।

धर्म-रक्षण के उपाय

अब सवाल आता है कि धर्म का रक्षण कैसे हो? इसके लिए तीन बातें करनी होंगी :

१. धर्म में जो गैर-जरूरी तत्त्व दाखिल हो गये हैं, उन्हें हटाया जाय और स्पष्ट कहा जाय कि वे जरूरी नहीं हैं।

२. भिन्न-भिन्न धर्मवाले सूक्ष्म बातों में जो एक-दूसरे का विरोध करते हैं और विरोध को संघर्ष का रूप देते हैं, उसके बदले में सर्वमान्य नैतिक मूल्यों को प्रतिष्ठित किया जाय और उसके अनुसार जीवन बिताने की कोशिश की जाय। सूक्ष्म चीजें बाद में ली जायँ।

३. धर्म-विचार क्रम के अनुसार लोगों के सामने रखा जाय।

ऐसे करने से ही लोगों में धर्म तथा श्रद्धा स्थिर होगी और विज्ञान भी प्रगति कर सकेगा।

अनुशासनहीनता की जिम्मेवारी किस पर?

प्रश्नः—आज विद्यार्थियों में अनुशासनहीनता बढ़ती जा रही है। शिक्षाकेन्द्रों की पुनीत धारणा नष्ट हो चुकी है। उसे पुनः कैसे प्राप्त करें?

विनोबाजीः—यह बात ठीक है कि आज विद्यार्थियों में शिस्त कम है। लेकिन मुझे आश्चर्य होता है कि उनमें इतनी भी शिस्त कैसे बची है? क्योंकि आज हिंदुस्तान में जो तालीम दी जा रही है, उसका वास्तविकता के साथ कोई सम्बन्ध नहीं है। समाज का ढांचा विषमता पर बना हुआ है, दर्जे बने हैं, स्कूल में भी कम-ज्यादा तनख्वाह दी जाती है। जहाँ इस तरह सारे गलत मूल्य मौजूद हैं, वहाँ विद्यार्थी इतनी ज्यादा शिस्त रखते हैं, सचमुच में यह आश्चर्य की बात है। मेरी कभी यह शिकायत नहीं रही है कि मेरे वर्ग में विद्यार्थियों ने कभी ध्यान नहीं दिया, बल्कि मेरा तो यह अनुभव रहा है कि जिन सभाओं में विद्यार्थी ज्यादा तादाद में आये, वहाँ अत्यन्त शांति रही। इस तरह प्रत्यक्ष अनुभव को देखते हुए मैं समझता हूँ कि हिंदुस्तान के विद्यार्थी काफी विनयशील हैं। वे प्राचीन काल से चली आ रही सभ्यता को भूले नहीं हैं।

युद्ध और नैतिक मूल्य

तालीम में कुछ गलत बातें हैं और अलावा इसके गत दो महा-युद्धों के कारण सारी दुनिया में नैतिक मूल्य गिर गये हैं, शाश्वत मूल्यों पर जो श्रद्धा थी, वह खत्म हो गयी है। लड़ाइयों में बहुत बुरी चीजों को बढ़ावा दिया गया है। जैसे युद्ध-संतति, सिपाहियों के लिए भोग के साधन की पूर्ति करना आदि का बुरा असर हुआ है। सारे देश में शराब-बंदी हो तो भी फौज के लिए अपवाद रखा जाय, ऐसा कहा जाता है। उस पर मैंने कहा कि रामजी की सेना में जो बंदर थे, वे शराब नहीं पीते थे, फल खाते थे। अपनी यह सेना रामजी की सेना है या रावण की? इसी प्रश्न पर मुख्य चीज निर्भर करती है। अगर हम देश की रक्षा के लिए रामजी की सेना बनाना चाहते हैं तो सिर्फ ३६ इंच छातीवाले नहीं, बल्कि अच्छे दिल और दिमागवाले सिपाही लिये जायँ। अगर सेना की जरूरत महसूस होती हो तो उसमें अच्छे-अच्छे लोग चुनकर लिये जायँ। आज सारी दुनिया को फिक्र है कि आबादी कैसे कम की जाय! लेकिन उधर रूस को आबादी बढ़ाने की फिक्र है। वहाँ पर ज्यादा संतान पैदा करने के लिए उत्तेजन दिया जा रहा है। जिसे ज्यादा बच्चे हों, उसे बोनस मिलता है। यह इसलिए कि रूसवालों को फौज के लिए सशस्त्र सिपाही चाहिए। अगर रूस ही दुनिया है, याने रूस के अलावा दुनिया है ही नहीं, ऐसा वे सोचते हैं तो रूस में जन-संख्या बढ़ाने की जरूरत है। लेकिन सारी दुनिया एक है, ऐसा मानकर हम सोचते हैं, तब तो रूस का यह चिंतन बिलकुल गलत ही कहा जायगा।

आज सारी दुनिया में सरकार के नेताओं का जो चिन्तन चलता है, उसमें वे यही सोचते हैं कि अमुक चीज में युद्ध-शक्ति कितनी है। वे यह नहीं सोचते हैं कि अमुक चीज में शांति-शक्ति कितनी है! इसमें हमारे कुछ नेता अपवाद हैं, क्योंकि उनका गांधीजी तथा भारतीय सभ्यता के साथ संबंध है।

आज फौज के लिए जो आजादी दी जाती है, उसका परिणाम बहुत भयंकर आता है। क्योंकि युद्ध खत्म होने पर जब सिपाही अपने-अपने गाँव लौटते हैं तो उनकी सारी बातें समाज में फैल जाती हैं। इन दो महायुद्धों ने नैतिक मूल्यों को जितना खत्म किया, उतना और किसी चीज ने नहीं किया। आज सारी दुनिया में नीति-विचार ढीला पड़ गया है, इसलिए सारी दुनिया में खतरा उपस्थित हो गया है।

इस संकट से बचने का अब एकमात्र यही उपाय है कि समाज-रचना अहिंसा की बुनियाद पर की जाय। देश की रक्षा केवल सेना से होनेवाली नहीं है, बल्कि शान्ति-सेना से, अहिंसक शक्ति से तथा सत्याग्रह-शक्ति के विकास से होनेवाली है। इस बात का एहसास समाज को जितना होगा, उतना नीति-विचार ठीक होता जायगा। बाहरी तांत्रिक पद्धति से नीति को कसने की कोशिश करने से काम नहीं बनेगा। इस तरह आज सारे समाज में नीति-विचार ढीला पड़ा है और उसके परिणाम-स्वरूप विद्यार्थियों में भी नीति कम हुई है।

मैंने इस बार गुजरात-यात्रा में देखा कि जो विद्यार्थी मुझ से चर्चा करने आये, उन्होंने ज्यादा से ज्यादा सवाल अध्यात्म के बारे में पूछे। अकसर माना जाता है कि गुजराती की दृष्टि व्यापार की होती है। लेकिन हमें वहाँ पर जो अनुभव आया, उससे आशा पैदा हुई कि गांधीजी का गुजरात कुछ कर सकता है। वहाँ पर विद्यार्थियों ने मुझे जो सवाल पूछे, वे केवल पुस्तकी सवाल नहीं थे, बल्कि उनके निज के जीवन के थे। इसलिए मुझे

विश्वास है कि हिंदुस्तान की विद्यार्थी-जमात जिंदा दिलवाली है। मूल दुरुस्त करने की चीज दूसरी है।

अध्यापकों का सवाल

प्रश्नः—आज अध्यापकों को समाज, पालक और विद्यार्थी तीनों की तरफ से कोई प्रतिष्ठा नहीं दी जाती है। अध्यापकों की आर्थिक आवश्यकताएँ आदि को ध्यान में रखकर उनकी प्रतिष्ठा कैसे स्थापित की जा सकती है?

विनोबाजी :—यह गुरु-प्रतिष्ठा का विषय बहुत महत्त्व रखता है। हमें यह कबूल करना पड़ेगा कि स्वराज्य के आंदोलन में नेताओं ने गुरुजनों की कुछ अप्रतिष्ठा की। स्वराज्य में जैसे पुराने नेता विद्यार्थियों से कहते थे, वैसे ही इस जमाने में भी कुछ असंतुष्ट नेता कहते हैं। परिणामस्वरूप शिक्षकों की प्रतिष्ठा कम होती जा रही है, लेकिन मूल कारण इतना ही नहीं है।

शिक्षकों के लिए प्रतिष्ठा की शक्यता ही आज कम हुई है। आज शिक्षक को पढ़ाने का एक यन्त्र माना गया है। क्या पढ़ाया जाय, कितना पढ़ाया जाय, कौन-सी किताबें पढ़ायी जायँ आदि सब तय करनेवाले दूसरे हैं। जैसे फलाने खेत में क्या बोना, कितना बोना आदि सब किसान तय करता है और फिर उसके अनुसार नौकर को काम करने का आदेश दिया जाता है, उसी हैसियत में आज शिक्षक हैं। उन्होंने अच्छा काम किया तो वे अच्छे नौकर माने जायेंगे और खराब काम किया तो खराब नौकर। इस हालत में शिक्षक और विद्यार्थी का वह संबंध नहीं बन सकता, जो हम चाहते हैं। इसलिए मैं बहुत आजिज हूँ।

मैं सरकार से कहता हूँ कि आप अपने विभागों की अलग-अलग परीक्षा लीजिये। उन परीक्षाओं के लिए कोर्स, फीस आदि तय कीजिये। फिर जो कोई वह परीक्षा देना चाहेगा, वह देगा और पास होगा तो उसे नौकरी मिलेगी। उसके लिए यह जरूरी नहीं होगा कि वह फलानी डिग्री प्राप्त किया हुआ हो या फलाने स्कूल में पढ़ा हुआ हो। इससे लोगों को अपनी इच्छा के अनुसार स्कूल चलाने में उत्साह मालूम होगा और गुरुजनों की प्रतिष्ठा स्थापित होगी।

इस पर से आक्षेप उठाये जाते हैं कि लोगों में उतनी शक्ति नहीं है कि वे अपने स्कूल चलायें। आज स्कूलों के जरिये जो सांप्रदायिक गलत विचारों का प्रचार हो सकता है, उसे भी कानून के बिना कैसे रोका जा सकता है? परन्तु तालीम सरकार के हाथ में रहे और शिक्षकों की हैसियत नौकरों की हो तो इसमें मैं बड़ा खतरा देखता हूँ। आज शिक्षक यंत्रवत् काम करते हैं। परीक्षा में इतने लड़के पास हुए, इसमें इज्जत महसूस करते हैं, लेकिन उन्हें सलाहगार की हैसियत हासिल नहीं है। उन्हें वह हैसियत हासिल हो, इसलिए यह होना चाहिए कि जगह-जगह विद्वान लोग अपनी शालाएँ चलायें। सरकार सिर्फ सुझाव दे, लेकिन पूरी सत्ता लोगों के ही हाथ में रहे। इसके सिवाय आज की हालत में शिक्षकों की प्रतिष्ठा कायम करने के लिए मुझे कोई उपाय नहीं सूझ रहा है।

दुश्चक्र में फँसी आज की शिक्षा

अभी केरल में क्या चल रहा है, यह आप भली भाँति जानते ही हैं। चर्चवाले और दूसरे भी सरकार के खिलाफ कसकर खड़े हैं। वे कहते हैं कि हम स्कूल नहीं खोलेंगे। वहाँ जो शिक्षा-अधिनियम पास हुआ, वह राष्ट्रपति के पास संमति के लिए भेजा गया था। उस पर कुछ आक्षेप उठाये गये थे, इसलिए राष्ट्रपति ने उसे न्यायाधीश के पास भेज दिया। न्यायाधीश ने कुछ सुधार सुझाकर करीब-करीब पहले जैसा ही अधिनियम यों कहकर वापिस भेजा कि वह कानून के अंदर है। फिर केरल विधान-सभा ने उतने सुधार करके बिल पास किया। अब उसके खिलाफ आन्दोलन शुरू हुआ है कि उस अधिनियम के कारण सारे स्कूल सरकार से जकड़े जाते हैं।

हम तो मानते हैं कि यह सवाल सारे देश भर में पेश है। दूसरे सूबों की सरकार जो करना चाहती है, कर नहीं पा रही है; वही केरल-सरकार ने कर लिया है। दूसरे लोग ढीले-ढाले हैं। कम्युनिस्ट ढीले-ढाले नहीं हैं। वे कसकर काम करते हैं। वैसे वहाँ पर कम्युनिस्ट जो कर रहे हैं, वह कानूनी है।

आज एक बुनियादी सवाल यह है कि सरकार के हाथ में तालीम कितनी मात्रा में रहे? सरकार के हाथ से जनता के हाथ में तालीम लाने की युक्ति हासिल होगी, तभी शिक्षकों को इज्जत हासिल हो सकती है।

राजनीति और विद्यार्थी

प्रश्न :—विद्यार्थियों को अपने स्वार्थ-साधन का माध्यम बनानेवाली राजनैतिक दलों की नीति के बारे में आपके क्या विचार हैं? क्या यह सही नहीं है कि छात्रों के असंतोष के लिए राजनैतिक दल जिम्मेवार हैं?

विनोबाजी :—मेरा यह विचार है कि विद्यार्थियों की प्रतिष्ठा इसी में है कि वे आज के राजनैतिक पक्षों के अंदर दाखिल न हों। इसका अर्थ यह नहीं है कि विद्यार्थी राजनैतिक चिंतन न करें। परन्तु उनकी प्रतिष्ठा बड़ी है और राजनैतिक सवाल छोटे हैं। छोटे सवाल छोटे दिमाग से हल किये जायँ तो बड़ा खतरा है। इसलिए जिनका दिमाग बड़ा है, जिनकी दृष्टि विश्व-व्यापक है, वे ही बड़े सवालों को हल करें।

हममें सबसे पहले 'जय-जगत्' की दृष्टि आनी चाहिए। विद्यार्थियों को जगत् की दृष्टि से ज्ञान-संग्रह करना चाहिए। फिर वे व्यावहारिक क्षेत्र में आयेंगे और राष्ट्र का ही नहीं, छोटे से देहात का भी कारोबार चलायेंगे तो देहात के सवाल भी व्यापक और वैज्ञानिक दृष्टि से हल करेंगे। इसलिए प्रथम जरूरत यह है कि विद्यार्थी ब्रह्मविद्या हासिल करें और विश्व-व्यापक दृष्टि लायें।

राजनीतिज्ञों का भोलापन

आज सारे सवाल हल करने का काम ऐसे नेता कर रहे हैं, जिनके दिमाग छोटे हैं। मामूली किसान की कोशिश रहती है कि पड़ोसी के खेत की कुछ भूमि अपने पास आ जाय। इसलिए वह खेत की बाड़ थोड़ी-थोड़ी खिसकाता जाता है और धीरे-धीरे पाव एकड़ जमीन हथिया लेता है। अगर किसी को मालूम नहीं हुआ तो उतनी जमीन उसे हासिल हो गयी। आज बड़े-बड़े देशों के नेता भी उस खुदगर्ज, अज्ञानी किसान जैसा ही करते हैं। एकदम मारवाड़ तो हाथ में नहीं आ सकता है, लेकिन आज थोड़ासा कैलाश, मानसरोवर अपने अधिकार में आ जाय, ऐसा सोचते हैं। अगर उतना हजम कर लिया तो आगे बढ़ने का विचार किया जा सकेगा। नेताओं के चिन्तन का यह तरीका सारी दुनिया के लिए खतरनाक बन जाता है। राजनीति स्वयं खतरनाक चीज नहीं है, लेकिन राजनीति में उसी को पड़ना चाहिए, जिसको ब्रह्मविद्या हासिल हुई हो और जिसकी दृष्टि विश्व-व्यापक बनी हो। ऐसा शख्स राजनीति में पड़ेगा तो छोटे मसले हल करने में भी आत्मज्ञान और विश्व-व्यापक दृष्टि का उपयोग करेगा। इससे दुनिया सही ढंग से आगे बढ़ पायेगी।

कुछ लोग कहते हैं कि राजनीति जैसे विषय को समझने के लिए विद्यार्थियों के दिमाग योग्य नहीं बने हैं, इसलिए उन्हें राजनीति में नहीं पड़ना चाहिए। लेकिन मैं तो विद्यार्थियों से कहता हूँ कि आपकी योग्यता ज्यादा है, उसे आप कम मत कीजिये। चौंसठ साल की उम्र के बावजूद मैंने अपने को इस हैसियत में रखा है कि व्यापक पैमाने पर सारे जगत् की सोचूँगा और फिर अपने देश या प्रान्त के मसलों के बारे में सलाह दूँगा। इसी हैसियत में विद्यार्थी अपने को कम-से-कम २१ साल की उम्र तक रखें।

दृष्टि में राजनीति नहीं, मानवता हो

अभी पाकिस्तान और हिन्दुस्तान के बीच पानी का मसला पेश है। वह दोनों पक्षों के लिए अत्यन्त समाधानकारक तरीके से हल हो सकता है, यदि उसमें हम ज्यादा कंजूसी न करें। प्रेम से मसला हल करें, इसकी मुझे बहुत चिन्ता हो रही है। मैं अगर छोटे दिमाग से सोचता तो यही सोचता कि हमारा पानी वहाँ नहीं जाना चाहिए। दूसरे देशों के लिए हमें ज्यादा खर्चा नहीं करना चाहिए। यह बात ठीक है कि हम खैरात नहीं कर सकते हैं, परन्तु इस मसले पर राजनीति की दृष्टि से नहीं, बल्कि सामाजिक और मानवता की दृष्टि से सोचना चाहिए। मेरी यह जो आदत है, वह आप कम-से-कम २१ साल तक रखेंगे तो अच्छा होगा।

भूगोल कैसे पढ़ाई जाय ?

तालीम के बारे में भी मेरे अपने कुछ विचार हैं। आज प्रथम तहसील का, फिर जिले का, फिर प्रान्त, देश और दुनिया का भूगोल पढ़ाया जाता है, वह बिल्कुल बेढंगा तरीका है। बच्चे सत्य को समझ सकते हैं। झूठ नहीं बोलना चाहिए, माया-मोह, मेरा-तेरा नहीं करना चाहिए, यह समझ सकते हैं। फिर बाद में उन्हें सिखाना पड़ता है, फलानी चीज अपनी है, दूसरों की नहीं है। अगर यह न सिखाया जाय तो बच्चे अपनी चीज किसी को भी दे देंगे। ऐसी उनकी व्यापक बुद्धि होती है। इसलिए प्रथम कुल दुनिया का विस्तार उनके सामने रखना चाहिए। खगोल शास्त्र और दुनिया का भूगोल पढ़ाने के बाद फिर अपने देश का भूगोल पढ़ाना चाहिए। यह ठीक है कि उन्हें अपने महाल का, अपने नजदीक के प्रदेश का ज्ञान होना ही चाहिए, लेकिन कुल दुनिया का ज्ञान दिया जाय तो उनकी दृष्टि व्यापक, विशाल बनेगी।

विद्यार्थियों को समझना चाहिए कि हम हिन्दुस्तानी नहीं बल्कि विश्व-मानव हैं, दुनिया के नागरिक हैं। उसके बाद हिन्दुस्तानी, फिर राजस्थानी या पंजाबी हैं। पहले से ही छोटे बनोगे तो बाद में बड़े बनना असंभव होगा। इसलिए विद्यार्थियों को विश्व-व्यापक दृष्टि रखकर राजनीति को छोड़ देना चाहिए।

◆◆◆

प्रार्थना-प्रवचन

मोहरली (पंजाब) १०-५-'५९

अहंकार छोड़कर श्रद्धापूर्वक सेवा करने का व्रत लें

कांगड़ा जिले में पूरी श्रद्धा से काम हो और कार्यकर्ताओं की शक्ति लगे तो यहाँ अक्राणी महाल जैसा काम हो सकता है। यहाँ आदिवासी क्षेत्र है और दूसरी अनुकूलताएँ भी हैं। मुझे विश्वास है कि आप इस बारे में अवश्य ही सोचेंगे।

कुछ लोगों का खयाल है कि आदिवासी क्षेत्र में क्रान्ति होती है तो उसका कोई असर नहीं हो सकता। इसलिए वे ऐसे क्षेत्र को उपेक्षा की दृष्टि से देखते हैं। मैं समझता हूँ कि परमेश्वर के भक्तों को ऐसा चिन्तन नहीं करना चाहिए। यह चिन्तन अहंकार से परिपूर्ण है। परमेश्वर के भक्त निरहंकारी होते हैं। वे सब-से पहले जिसको जरूरत होती है, उसी की सेवा में लगते हैं।

आदिवासी क्षेत्र और ग्रामदान

मुझे अगर कुल आदिवासी क्षेत्र दान में मिलें और भारत में कुछ भी दान न मिले तो भी मैं नाचूँगा। जिनकी सेवा करना जरूरी है, उनकी सेवा का मौका मुझे मेरी ही शर्त पर ग्रामदान के निमित्त से मिलता है तो बहुत बड़ी बात हो जाती है। भगवान पर भक्तों की शर्त मानने की कोई जिम्मेदारी नहीं है। भक्त का काम है कि वह हर हालत में भगवान की सेवा में लगा रहे। उसकी ओर से कोई भी शर्त न लगायी जाय। आदिवासी क्षेत्र में काम करने की मेरी शर्त को भगवान ग्रामदान के रूप में स्वीकार कर लेता है तो उसका बहुत बड़ा उपकार है।

जो लोग कहते हैं कि ये पिछड़े हुए अज्ञानी, पुराने जमाने के अवशेष आदिवासी क्या दान देंगे ? दान में तो बम्बई जैसे शहर मिलने चाहिए। लेकिन हमें समझना चाहिए कि बम्बईवालों को हमारी सेवा की जरूरत नहीं है तथा परवाह भी नहीं है और जिनको हमारी परवाह है, उनकी हम सेवा नहीं करते हैं तो कितनी गलत बात है ! हमें क्रान्ति का अभिमान छोड़कर जिनको जरूरत हो, उनकी सब से पहले सेवा करनी चाहिए। क्रान्ति करनेवाले हम होते कौन हैं ? क्रान्ति तो भगवान करता है। इसलिए ग्रामदानपूर्वक आदिवासियों की सेवा का मौका मिले तो हमें बहुत खुशी होगी।

मिशनरियों की सेवा

ग्रामदान न हो, तब भी आदिवासियों की सेवा में लग जाना चाहिए। ईसाई मिशनरी उनकी सेवा कर रहे हैं। हम अक्राणी महल में गये। वहाँ के लोग राम और कृष्ण का नाम भी नहीं जानते थे। हमने उन्हें राम-नाम आदि सिखाये। उन लोगों के नाम किसन, कान्हा जैसे होते हैं। इसी पर से हमने उन्हें कृष्ण आदि के नाम भी सिखाये। हमारे जाने से पहले वहाँ कोई भी सेवक नहीं पहुँचे थे। फिर भी हमें उस समय आश्चर्य हुआ, जब कि वहाँ ईसाई मिशनरियों को सेवा करते देखा। वर्षों से ईसाई लोग वैसे उपेक्षित आदिवासी क्षेत्र में सेवा कर रहे हैं।

चालीस साल पहले एक मिशनरी वहाँ गया। वह वहाँ बीमार पड़ गया और उसने वहीं की वनस्पति खाकर आरोग्य प्राप्त किया। तब उसने यह निश्चय भी कर लिया कि मैं यहीं लोगों की सेवा करूँगा। विदेशी लोग इतने दूर से आकर हमारे यहाँ के उपेक्षित लोगों की सेवा करें और हम दूर खड़े तमाशा देखते रहें, इससे बढ़कर मेरे लिए और क्या दुःख हो सकता है ? मैं अपने सेवकों की मनोदशा को देखकर बहुत ही चिन्तित हो रहा था। संयोग की बात है, वैसे प्रसंग में मुझे वहाँ कुछ मूर्तियाँ दिखाई पड़ीं। वहाँ एक जगह खुदाई हुई तो भगवान की मूर्तियाँ मिलीं। भगवान बुद्ध की मूर्तियाँ थीं वे। बुद्ध के जमाने में बहुत बड़ी तादाद में लोग सेवा के लिए निकले थे। चीन, जापान, पेलेस्ताईन आदि दूर-दूर देशों तक

बुद्ध प्रचारक गये। ताशकंद में बुद्ध की मूर्तियाँ मिलती हैं। उससे भी पता चलता है कि बौद्ध लोग एक मिशनरी ढंग से जन-सेवा के लिए बाहर निकले थे। हम लोग युरोपियन मिशनरियों की तरह तलवार या तराजू लेकर बाहर नहीं गये, बल्कि ज्ञान, प्रेम, करुणा का संदेश लेकर गये। बुद्ध की उन मूर्तियों को देखकर मुझे जरा-सा उत्साह आया और यह महसूस हुआ कि हम बिलकुल नालायक तो नहीं हैं। पुराने जमाने के सेवा-कार्य को लेकर सहज ही प्रेरणा मिलती है।

क्रान्ति की वासना छोड़कर सेवा-कार्य करें

पुराने जमाने में इतना काम किया, लेकिन आज क्या कर रहे हैं? सभी लोग विषय-वासना में फँसे हैं। कुछ लोग कहते हैं कि मैं पार्टियों पर प्रहार कर रहा हूँ। लेकिन सच तो यह है कि पार्टियों में आज हैं कौन? कितने लोग हैं जो पार्टियों का काम करते हैं? सच्चे दिल से अगर पार्टी के नाम से सेवा का काम करनेवाले लोग होते, तब भी लोगों को बहुत राहत मिल सकती थी। लेकिन पार्टी के नाम पर तो आज अपने स्वार्थ का पोषण किया जा रहा है। लोग भोग में फँसे हुए हैं। इसीलिए हिन्दुस्तान से निष्काम सेवा खत्म हो गयी है। अब आदिवासी क्षेत्र में ग्रामदान के जरिये फिर से निष्काम सेवा करने का मौका मिलता है तो अपना सौभाग्य समझना चाहिए।

शिवाजी ने पहले आसान किले जीते और बाद में जीते कठिन किले। उन्होंने पहले से ही कठिन किलों पर अपनी शक्ति आजमाना शुरू कर दिया होता तो वे आगे नहीं बढ़ सकते थे और अपने काम में कामयाब भी नहीं हो सकते थे। वैसे ही हमें भी इन छोटे-छोटे गाँवों में सेवा का काम करके आगे बढ़ना चाहिए। आदिवासी क्षेत्रों में क्रान्ति की वासना छोड़कर हमें सेवा का काम करना चाहिए, फिर क्रान्ति तो पीछे-पीछे आने ही वाली है। अभी हम पिछड़े हुए लोगों की सेवा करने से इन्कार करेंगे तो यह एक विलक्षण जातिभेद खड़ा हो जायगा।

मैंने कांगड़ा जिले में दो दिन बिताये हैं। शेर के पास सूँघने की शक्ति होती है। वैसे ही मेरे पास भी एक शक्ति है, जिससे मैं यहाँ की शक्ति को पहचान सकता हूँ। इसलिए मैंने यहाँ की शक्ति को पहचान लिया है और उसी के बल पर कह रहा हूँ कि आपको आदिवासी क्षेत्रों की सेवा में लग जाना चाहिए। आप इस काम में लगते हैं तो यहाँ बहुत बड़ा काम हो सकता है।

पुरानी तपस्या कब तक चलेगी?

आज एक मठवाले भाई हमसे पूछ रहे थे कि हमें किस प्रकार की सेवा करनी चाहिए? मैंने उन्हें जवाब दिया कि अपने बाप-दादों को याद करो। रामानुज, रामानंद और तुलसीदास ने क्या किया? वे लोगों की सेवा में लगे रहे, इसीलिए लोग उनके वश में हुए। लोगों की उनके प्रति श्रद्धा पैदा हुई और उनके लिए मठ बने। ये मठ उनकी सेवा के सबूत हैं। इस समय जो मठ-पति हैं, उनके पास सेवा-धर्म नहीं रह गया है। मठवालों के पास थोड़ी-सी जमीन है। उसके कारण जगह-जगह झगड़े चलते हैं। अदालत में भी वे लड़ने के लिए जाते हैं। इसे आप क्या कहेंगे? मठवालों के लिए इस प्रकार झगड़ना कितना गलत है! इसलिए अब अगर मठवाले भूदान का काम उठा लेते हैं तो तुलसीदास और रामानुज ने जो किया था, वही काम फिर से शुरू हो जायगा।

हिन्दूधर्म की इज्जत इसीलिए है कि उसने पुराने जमाने में त्याग-तपस्या की थी। आज नयी तपस्या नहीं हो रही है। पुरानी पूँजी के बल पर यह व्यापार कब तक चलता रहेगा? अब सभी धर्मवालों की कसौटी होनेवाली है। हिन्दू, इस्लाम, ईसाई, बौद्ध आदि सारे धर्म वसिष्ठ, विश्वामित्र, पैगम्बर, खलीफा, ईसामसीह, बुद्ध आदि के नाम पर जी रहे हैं, लेकिन अब और कितने दिन तक जी सकेंगे? अगर ये धर्मवाले नयी तपस्या नहीं करेंगे तो इस जमाने में खत्म हो जायेंगे।

ये टुकड़े! ये झगड़े!!

पंजाब में शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबन्धक समिति के चुनाव होने जा रहे हैं। एक पार्टी ने पंजाबी सूबे का नारा लगाया है और दूसरी पार्टी ने दूसरा नारा लगाया है। गुरुओं के स्थान में सारे सियासी मामले लाने से धर्म के टुकड़े हो रहे हैं। एक बाजू ४५ वाले और दूसरे बाजू ५५ वाले हुए तो ५५ वाले जीत जायेंगे, जीतनेवाले खुशी मनायेंगे, लेकिन मैं कहना चाहता हूँ कि भले ही ५५ वाले जीत जायँ, लेकिन सिखधर्म हार जायगा। सिखधर्म सभी में मेल पैदा करने के लिए हुआ था। लेकिन ४५-५५ के नाम पर आज दो भागों में बँट रहा है। क्या यह धर्म के लिए शोभा देता है?

गुरु नानक ने कहा था: "आयी पंथी सकल जमाति"। दुनिया के जितने लोग हैं, कुल एक जमात के हैं। यह बिलकुल सर्वोदय की भाषा है।

इस्लाम ने कहा है, "उम्मतुम् वाहिद्", तुम सब एक जमात हो। इस स्थिति में भी इस्लाम में सिया-सुन्नियों के झगड़े चले। फिर उनके साथ ईसाइयों का संघर्ष हुआ। इस प्रकार आस्तिकों के झगड़ों ने दुनिया में नास्तिकता फैला दी। जितनी नास्तिकता इन आस्तिकों ने आपसी संघर्ष कर के फैलायी, उतनी नास्तिकता नास्तिकों ने भी नहीं फैलायी है। इसलिए जो धर्मवाले समझदार हैं, उनका फर्ज है कि वे धर्म के मर्म को समझें और भूदान के काम को उठा लें। मठवाले अपनी जमीन को दान में दे दें और लोगों से कहें कि आप मंदिर की पूजा चाहते हैं तो इसको फसल का अमुक हिस्सा देते रहिये। ऐसा करने से ही वे धर्म को उज्ज्वल रख सकेंगे।

ये धर्म का गला घोंटते हैं

भूदान-ग्रामदान शुद्ध धर्मकार्य है। हर धर्मवाले इसे अपना काम मानते हैं। जो स्वच्छ, निर्मल धर्म होता है, वह सभी का एक होता है। जो झगड़े का कारण होता है, वह धर्म ही नहीं होता। धर्म के नाम पर आनेवाली विकृतियाँ होती हैं। विकृतियों से हटना और धर्म को सही रूप देना, यही हमारा उद्देश्य है। इन दिनों हम गुरु नानक के 'जपूजी साहब' का पाठ करते हैं। उसमें एक विलक्षण प्रसंग आया है, जिसे देखकर मैं नाचने लगा। "जो परमेश्वर का नाम स्मरण करनेवाले हैं, वे किसी पन्थ पर नहीं चलते, क्योंकि धर्म के साथ उनका सीधा सम्बन्ध होता है।" "मन्ने मगु न चले पंथ, मन्ने धरम सेती सब बन्धु", इस तरह वहाँ पर पन्थ को धर्म-विरुद्ध कहा गया है। जिसका धर्म के साथ सीधा सम्बन्ध होता है, उसे इन बीच की एजेन्सियों की जरूरत नहीं होती। गुरु नानक ने समझ लिया कि पंथ बनने से खाली नुकसान होगा। इसीलिए वे पन्थ से दूर रहे। उन्होंने मनुष्य का सम्बन्ध पन्थ के बजाय धर्म के साथ जोड़ने पर बल दिया।

इस जमाने में हिन्दूधर्म की इज्जत जितनी गांधीजी ने बढ़ायी, क्या उतनी और किसी ने बढ़ायी है? लेकिन जिस

शख्स ने प्राणार्पण से हिन्दूधर्म की प्रतिष्ठा के लिए प्रयत्न किया, उसे एक हिन्दू ने ही कत्ल कर डाला। नयी तपस्या करनेवाले गांधीजी जैसों की कैसी स्थिति होती है!

टालस्टाय उत्तम ईसाई थे। गांधीजी पर उनका बहुत असर हुआ। उन्होंने भी अपने जमाने में चर्च का बहिष्कार पाया। चर्चवालों ने उन्हें बहिष्कृत कर दिया।

टालस्टाय के मरने के दस साल बाद उन्हें इस बहिष्कार से मुक्त किया गया।

इस तरह ये मठ, मंदिर और चर्चवाले धर्म-प्रचार के लिए सहायक बनने के बदले घातक बन रहे हैं। मंदिर, मठ, मस्जिद आदि सभी आरंभ में धर्म-प्रचार के लिए बनते हैं, लेकिन फिर बाद में धर्म का गला घोंटते हैं।

धर्म कब टिकेगा?

जब मठवाले भाई ने मुझे पूछा कि हमें क्या करना चाहिए? मैंने कहा कि भूदान का काम उठा लेना चाहिए। क्योंकि हिंदू-धर्म की विशेषता है कि वह महापुरुषों के नाम पर नहीं चलता, बल्कि उनके काम पर चलता है। ईसाई धर्म ईसा के नाम से चलता है। इस्लाम महंमद पैगंबर के नाम पर चलता है और बौद्ध धर्म बुद्ध के नाम पर चलता है, लेकिन हिन्दूधर्म एक सनातन विचार के आधार पर चलता है। हिन्दूधर्म में पूरा विचार-स्वातन्त्र्य है। कपिल, कणाद, याज्ञवल्क्य, रामकृष्ण आदि जितने भी पैदा हुए, उन सब ने हिंदूधर्म को बांधा नहीं है। जितने रामकृष्ण परमहंस, श्री अरविंद, गांधी जी आदि पैदा होते जायेंगे, उतना ही यह धर्म टिकेगा।

निरहंकार बनिये

आप इस कांगड़ा जिले के आदिवासी क्षेत्र में काम कीजिये। आप से क्रान्ति तब होगी, जब आप निरहंकार बनेंगे। तिलक महाराज ने महाराष्ट्र में जन-जागृति करने के लिए शिवाजी का उत्सव शुरू किया। उन्होंने एक बार कहा कि शिवाजी भगवान के द्वारा भेजे गये थे, इसलिए उन्होंने महाराष्ट्र में जन्म लिया। लेकिन अब वे दुबारा फिर महाराष्ट्र में जन्म नही लेंगें, क्योंकि महाराष्ट्र में अब यह अभिमान हो गया कि शिवाजी हमारे यहाँ पैदा हुए, शिवाजी हमारे हैं। जहाँ अहंकार हो, वहाँ भगवान अवतार नहीं लेते। आप निरहंकारी बनें तो प्रभु आप के यहाँ अवतार लेनेवाले हैं।

क्या मैं क्रान्ति करनेवाला हूँ? नहीं, मैं तो सेवा करनेवाला हूँ। मैं सेवक हूँ और निरहंकारी बनूँ तो यहाँ प्रभु अवतार लेंगे। आज तक प्रभु ने बड़ो-बड़ों में अवतार लिया, लेकिन आदिवासियों मैं अवतार नहीं लिया। अब वे आदिवासियों में अवतार लेनेवाले हैं। आदिवासियों की सेवा का मौका हमें मिला है तो इससे बढ़कर हमारे लिए और क्या लाभ हो सकता है? पंजाब के कार्यकर्ताओं को अपनी सारी ताकत लगाकर अब इस काम में जुट जाना चाहिए।

श्रद्धा से काम कीजिये

राम के पास कौन थे? बंदर! कृष्ण के पास? ग्वाले! ईसा मसीह के पास थे बारह शिष्य, जो अनपढ़ थे। ईसा मसीह जिंदगी में पेलेस्ताईन जैसे छोटे से मुल्क में घूमे थे, लेकिन आज उनका विचार कुल दुनिया में फैल रहा है। उनका काम इतनी गहराई में कैसे गया? इसलिए कि उनके शिष्य श्रद्धावान थे। प्रायः लोग जानते नहीं कि ईसा के बहुत से शिष्यों को शूली पर चढ़ाया गया, वे ज्यादा अक्ल नहीं रखते थे। भगवान का नाम लेकर लोगों को समझाना, यही उनका काम था। रोमन की हुकूमत उन्हें बहुत सताती थी। पचास साल तक उन्हें परेशान किया जाता रहा। उस जमाने में एक महाविद्वान था 'पाल', जो ईसा के शिष्यों को मारने के लिए जा रहा था। रास्ते में वह सोया। उसे स्वप्न आया। स्वप्न में भगवान कहने लगे कि 'पाल, तू मुझे क्यों सताता है?' पाल ने ताज्जुब से पूछा कि 'भगवान मैंने आपको कब सताया'? 'भगवान ने कहा, 'तू ने मेरे बेटों को सताया, याने मुझे सताया'। इस स्वप्न के बाद जब वह जगा तो उसे बहुत पश्चात्ताप हुआ और वह सेंटपाल बन गया। फिर उसने ईसाई धर्म का खूब प्रचार किया। उससे पहले जो ईसा के शिष्य थे, यद्यपि वे सारे अनपढ़ थे, फिर भी श्रद्धावान होने के कारण उन्होंने धर्म का झण्डा ऊँचा रखा। आप भी उन्हीं की तरह श्रद्धा से काम कीजिये और यह अहंकार मत रखिये कि हम क्रांति करनेवाले हैं।

सेवा करना हमारा धर्म है

हम सेवा करनेवाले हैं। सेवा करना हमारा धर्म है। ग्रामदानी गाँवों की जो शर्त है, वह क्रान्तिकारी है। जो शर्त को मान्य करते हैं, वे हमारी सेवा के अत्यन्त पात्र बन जाते हैं। लेकिन जो इस सेवा के क्षेत्र में ऐंठ रखेंगे, उनकी ऐंठ खत्म हो जायगी। इसलिए ऐंठ छोड़कर नम्र बनिये।

आदिवासियों को लोग अज्ञानी मानते हैं, लेकिन मैं इस बात से सहमत नहीं हूँ। उनका नैतिक जीवन बहुत अच्छा है। वे बालकों की तरह सरल हैं। उनमें कुटिलता नहीं है। इसलिए हम उनमें जायेंगे तो हम उनकी सेवा करके कुछ विशेष ही बनेंगे। हम उन्हें सिखाने के लिए नहीं, बल्कि सीखने के लिए भी जायँ। ◆◆◆

अनुक्रम

१. विद्यार्थी आत्मज्ञान और विज्ञान के आधार पर..
पठानकोट २१ मई '५९ पृष्ठ ४७७
२. अहंकार छोड़कर श्रद्धापूर्वक सेवा करने का व्रत लें
मोहरली १९ मई '५९ " ४८२

यह 'विनोबा-पैथी'

गाँव में एक एकड़ का बगीचा हो, उसमें ओषधि, वनस्पतियाँ रहें। रोग शुरू होते ही उसे छोटी-मोटी दवा से ठीक कर लिया जाय। थोड़ा सा रोग हो, फिर भी उसकी उपेक्षा न की जाय। प्राकृतिक उपचार, रामनाम, व्यायाम और स्वास्थ्य के नियमों के पालन में मेरा विश्वास है। आप कहेंगे कि यह कौन-सी पैथी है? तो मैं कहूँगा आप इसे 'विनोबा-पैथी' कहिये। ◆◆◆

श्रीकृष्णदत्त भट्ट, अ० भा० सर्व-सेवा-संघ द्वारा भार्गव भूषण प्रेस, वाराणसी में सम्पादित, मुद्रित और प्रकाशित।
पता : गोलघर, वाराणसी (उ० प्र०) फोन : १३९१ तार : 'सर्व-सेवा' वाराणसी।